जो अंतिम है वह प्रथम है

प्रश्न : आपके शिष्य वर्ग में जो अंतिम होगा, उसका क्या होगा?

ईसा ने कहा है: जो अंतिम होंगे, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम हो जायेंगे। लेकिन अंतिम होना चाहिए। अंत में भी जो खड़ा होता है, जरूरी नहीं कि अंतिम हो। अंत में भी खड़े होने वाले के मन में प्रथम होने की चाह होती है। अगर प्रथम होने की चाह चली गई हो और अंतिम होने में राजीपन आ गया हो, स्वीकार, तथाता, तो जो ईसा ने कहा है, वही मैं तुमसे भी कहता हूं : जो अंतिम हैं वे प्रथम हो जायेंगे।

प्रथम की दौड़ पागलपन है। संसार में तो ठीक, सत्य की खोज में तो बाधा है। संसार तो पागलखाना है। वहां तो दौड़ है, महत्वाकांक्षा है, स्पर्धा है, संघर्ष है। सत्य की यात्रा पर जो निकला है वह दौड़ से मुक्त हो तो ही पहुंचेगा। प्रतिस्पर्धा जाये, प्रतियोगिता मिटे। दूसरे से कोई संघर्ष नहीं है। सत्य कोई ऐसी संपदा नहीं है कि दूसरा ले लेगा तो तुम्हें कुछ कम हो जायेगा। संसार का धन तो ऐसा है कि दूसरे ने ले लिया तो तुम वंचित हो जाओगे; किसी ने कब्जा कर लिया तो तुम दरिद्र रह जाओगे। इसके पहले कि कोई और कब्जा करे, तुम्हें कब्जा कर लेना है। इसलिए दौड़ है।

संसार का धन तो सीमित है। चाहें बहुत हैं, धन बहुत थोड़ा है। चाहक बहुत हैं, धन बहुत थोड़ा है। अब किसी को राष्ट्रपति होना हो तो साठ करोड़ के देश में एक आदमी राष्ट्रपति हो पायेगा। साठ करोड़ को ही राष्ट्रपति होने का नशा है। तो कठिनाई तो होगी, संघर्ष तो होगा, ज्वर तो पैदा होगा, विक्षिप्तता जन्मेगी। इनमें जो सबसे ज्यादा विक्षिप्त होगा, वह राष्ट्रपति हो जायेगा। जो इस दौड़ में बिलकुल पागल हो कर दौड़ेगा, सब होश-हवास गंवा देगा, सब कुछ दांव पर लगा देगा, वही जीत जायेगा। यहां पागल जीतते हैं, बुद्धिमान हार जाते हैं। यहां जीत सिर्फ विक्षिप्तता का प्रतीक है।

जिनके तुम नाम इतिहास में लेते हो, उनके नाम पागलखानों के रजिस्टरों में होने चाहिए। जिनके आसपास इतिहास बुनते हो वही रुग्णतम लोग थे—चंगेज और तैमूर और नेपोलियन और सिकंदर और हिटलर और माओ। एक दौड़ है आदमी की कि सब पर कब्जा कर ले। और खुद न कर पाये तो दूसरा तो कर ही लेगा।

इसलिए देर करनी नहीं। इसलिए तो इतनी आपाधापी है, इतनी जल्दी है। चैन कहां, शांति कहां! बैठ कैसे सकते हो। एक क्षण विश्राम किया तो चूके। सब तो विश्राम नहीं करेंगे। दूसरे तो दौड़े चले जा रहे हैं। तो दौड़े चलो! मरघट में पहुंच कर ही रुकना। कब्र में गिरो, तभी रुकना।

लेकिन सत्य की संपदा तो असीम है। बुद्ध की महावीर से कोई प्रतीस्पर्धा थोड़े ही है, कि बुद्ध को मिल गया तो महावीर को न मिलेगा, कि महावीर को मिल गया तो कृष्ण को न मिलेगा, कि अब कृष्ण को मिल गया तो अब मुहम्मद को कैसे मिले! सत्य विराट है, खुले आकाश जैसा है; तुम्हें जितना पीना हो पीओ; तुम्हें जितना डूबना हो डूबो—तुम चुका न पाओगे।

इसलिए सत्य के जगत में क्या प्रथम क्या अंतिम! प्रथम और अंतिम तो वहां उपयोगी हैं जहां संघर्ष हो।

और शिष्य तो अंतिम ही होना चाहिए। शिष्यत्व का अर्थ ही यही है : ष्य

अंतिम खड़े हो जाने की तैयारी; पंक्ति में पीछे खड़े हो जाने की तैयारी। गुरु के लिए सर्वाधिक प्रिय वही हो जाता है जो सबसे ज्यादा अंतिम में खड़ा है। और अगर गुरु को वे प्रिय हो केवल जो प्रथम खड़े हैं तो गुरु गुरु भी नहीं। शिष्य तो शिष्य है ही नहीं, गुरु भी गुरु नहीं है। जो चुप खड़ा है, मौन प्रतीक्षा करता है, जिसने कभी मांगा भी नहीं, जिसने कभी शोरगुल भी नहीं मचाया, जिसने कभी यह भी नहीं कहा कि बहुत देर हो गई है, कब तक मुझे खड़ा रखेंगे; दूसरों को मिला जा रहा है और मैं वंचित रहा जा रहा हूं—जिसने यह कोई बात ही न कही; जिसकी प्रतीक्षा अनंत है; और जिसका धैर्य अपूर्व है—ऐसी अंतिम स्थिति हो तो निश्चित ही मैं तुमसे कहता हूं: जो अंतिम है वही प्रथम है।

लेकिन अंतिम खड़े हो कर भी अगर प्रथम होने का राग मन में हो और प्रथम होने की आकांक्षा जलती हो तो तुम खड़े ही हो अंतिम, अंतिम हो नहीं। ध्यान रखना, अंतिम खड़े होने से अंतिम का कोई संबंध नहीं।

भिखारी के मन में भी तो सम्राट होने की वासना है। तो सम्राट और भिखारी में फर्क क्या है? इतना ही फर्क है कि एक समृद्ध है और एक समृद्धि का आकांक्षी है। भेद बहुत नहीं है। भिखारी को भी मौका मिले तो सम्राट हो जाएगा। मौका नहीं मिला, असफल हुआ हारा—यह दूसरी बात है; लेकिन मस्त तो नहीं है, जहां है। आकांक्षा तो वही है रुग्ण, घाव की तरह।

तो दरिद्र होना जरूरी नहीं है कि तुम वस्तुतः त्यागी हो। दरिद्र होना सिर्फ पराजय हो सकती है। संसार को छोड़ देना आवश्यक नहीं है कि संन्यास हो। संसार को छोड़ देना विषाद में हो सकता है। थक गये, जीत दिखाई नहीं पड़ती, मन को समझा लिया कि छोड़े देते है, हटे ही जाते हैं—कम से कम यह तो कहने को रहेगा कि हम इसलिए नहीं हारे कि हम कमजोर थे; हम लड़े ही नहीं।

देखा, स्कूल में विद्यार्थी परीक्षा देने के करीब आता है तो कई विद्यार्थी परीक्षा देने से बचना चाहते हैं—कम से कम यह तो कहने को रहेगा कि कभी फेल नहीं हुए; बैठे ही नहीं, बैठते तो उत्तीर्ण तो होने ही वाले थे, लेकिन बैठे ही नहीं। परीक्षा के करीब विद्यार्थी बीमार पड़ने लगते हैं।

मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था। एक विद्यार्थी तीन साल तक मेरी कक्षा में रहा। मैं थोड़ा हैरान होने लगा। और हर वर्ष ठीक परीक्षा के दो-चार दिन पहले उसे बड़े जोर से बुखार, सर्दी-जुकाम और सब तरह की कठिनाइयां हो जाती है। एक सौ पांच, एक सौ छः डिग्री बुखार पहुंच जाता। मगर यह होता हर साल परीक्षा के पहले। मैंने तीन साल के बाद उसे बुलाया और मैंने कहा कि यह बीमारी शरीर की मालूम नहीं पड़ती; यह बीमारी मन की है। क्योंकि ठीक तीन-चार दिन पहले परीक्षा के हो जाता है नियम से। और जैसे ही तय हो जाता है कि अब परीक्षा में तुम न बैठ सकोगे, कि बस एकाध पेपर चला गया, वह चंगा हो जाता है, बिलकुल ठीक हो जाता है। शायद उसे भी पता नहीं है, लेकिन मन बड़ा धोखा कर रहा है। मन यह कह रहा है : 'अब हम कर भी क्या सकते हैं! बीमार हो गये, इसमें हमारा तो कुछ बस नहीं है। बैठते परीक्षा में तो उत्तीर्ण ही होने थे, स्वर्ण-पदक ही मिलना था; बैठ ही नहीं पाये।

परीक्षा में तो उत्तीर्ण ही होने थे, स्वर्ण-पदक ही मिलना था; बैठ ही नहीं पाये। तो कम से कम उनुत्तीर्ण होने की बदनामी से तो बचे।

बहुत संन्यासी इसी तरह से संन्यास लेते हैं। जिंदगी में तो दिखाई पड़ता है यहां जीत होगी नहीं; यहां तो हम से बड़े पागल जूझे हुए हैं। यहां तो बड़ा मुश्किल है। बड़ी छीन-झपट है। गला-घोट प्रतियोगिता है। यहां तो प्राण निकल जाएंगे। यहां जीतने की तो बात दूर, धूल में मिल जाएंगे। लाश पर लोग चलेंगे। यहां से हट ही जाओ। ऐसी पराजय और विषाद की दशा में जो हटता है वह अंतिम नहीं है। उसके भीतर तो प्रथम होने की आकांक्षा है ही। अब वह संन्यासियों के बीच प्रथम होने की कोशिश करेगा; त्यागियों के बीच प्रथम होने की कोशिश करेगा। अगर इस संसार में नहीं सधेगा तो कम से कम परमात्मा के लोक में...।

जीसस की मृत्यु के दिन उनके शिष्य रात जब विदा करने लगे तो पूछा कि एक बात तो बता दें जाते-जाते : जब प्रभु के राज्य में हम पहुंचेंगे तो आप तो निश्चित ही प्रभु के बिलकुल बगल में खड़े होंगे, आपकी बगल में कौन खड़ा होगा? हम बारह शिष्यों में से वह सौभाग्य किसका होगा? आपका तो पक्का है कि आप परमात्मा के ठीक बगल में खड़े होंगे, वह तो बात ठीक। आपके पास कौन खड़ा होगा? हम बारह हैं। इतना तो साफ कर दें, हमारा क्रम क्या रहेगा?

सोचते हैं? इनको संन्यासी कहिएगा? यही जीसस के पैगंबर बने, यही उनका पैगाम ले जाने वाले बने। इन्होंने जीसस की खबर दुनिया में पहुंचाई। ये जीसस को समझे होंगे, जो आखिरी वक्त ऐसी बेहूदी बात पूछने लगे? जुदास तो धोखा दे ही गया है, इन्होंने भी धोखा दे दिया है। जुदास ने तो तीस रुपये में बेच दिया, पर ये भी बेचने को तैयार है; इनकी भी बुद्धि वही की वही है। इस संसार में इनमें से कोई मछुआ था, कोई बढ़ई था, कोई लकड़हारा था; इस दुनिया में ये हारे हुए लोग थे, इस दुनिया को छोड़कर अब ये सपना देख रहे हैं, कि वहां दूसरी दुनिया में चखा देंगे मजा—धनपतियों को, सम्राटों को, राजनीतिज्ञों को, कि खड़े रहो पीछे! हम प्रभु के पास खड़े हैं! हमने वहां दुख भोगा!

ऐसी आकांक्षा हो तो तुम अंतिम नहीं। तो अंतिम का अर्थ समझ लेना। अंतिम जो खड़ा है, ऐसा अंतिम का अर्थ नहीं है। जो अंतिम होने को राजी है; जिसकी प्रथम होने की दौड़ शांत हो गई है, शून्य हो गयी है; जिसने कहा, मैं जहां खड़ा हूं, यही परमात्मा का प्रसाद है; मैं जहां खड़ा हूं, बस इससे अन्यथा की मेरी कोई चाह नहीं, मांग नहीं, तृप्त हूं यहां—ऐसा जो अंतिम हो तो प्रथम हो जाना निश्चित है!

— ओशो

अष्टावक्र महागीता, तीसरा भाग

चौदहवां प्रवचन, पहला प्रश्न

(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)